

नारायण यादव

बनाम

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय

(दाण्डिक अपील सं. 3343/ 2025)

05 अगस्त, 2025

[जे. बी. पर्दीवाला* एवं आर. महादेवन, न्यायाधीशगण]

विचारार्थ विवादक

क्या उच्च न्यायालय ने स्वयं अपीलार्थी- अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत कर संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन और चिकित्सकीय साक्ष्य पर भरोसा करते हुए आक्षेपित निर्णय पारित कर उसकी दोषसिद्धि को यथावत् रखना, यद्यपि, उसे भा.द.वि. की धारा 302 से धारा 304 भाग I में परिवर्तित कर गलती की?

शीर्ष टिप्पण

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 25 - दण्ड विधान, 1860 - धारा 302, 304 भाग I - संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन, साक्ष्य में ग्राह्य नहीं - अपीलार्थी- अभियुक्त ने खुद एक शराब के नशे में हुए झगड़े में मृतक की हत्या - जो मृतक के कथित रूप से अपीलार्थी की प्रेमिका के बारे में एक अश्लील टिप्पणी करने पर हुई थी- को स्वीकार करते हुए प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज कराई - धारा 302, भा.द.वि. के तहत दोषसिद्धि - उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को यथावत् रखने के लिए संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन और चिकित्सकीय साक्ष्य पर भरोसा किया, यद्यपि, धारा 300 के अपवाद 4 का लाभ देते हुए इसे भा.द.वि. की धारा 302 से धारा 304 में बदल दिया गया था - पोषणीयता :

अभिनिर्धारित : पोषणीय नहीं - संस्वीकृति वाला प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है- प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री पर किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष एक संस्वीकृति होने के नाते साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 लागू होती है- किसी अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति वाले प्रकृति की एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन उसके विरुद्ध साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, सिवाय इस सीमा तक कि वह दर्शाता है कि उसने अपराध के तुरंत बाद एक कथन किया था, जिससे उसकी पहचान प्रतिवेदन के निर्माता के रूप में की गई थी, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत उसके आचरण के साक्ष्य के रूप में ग्राह्य है- उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री को साक्ष्य के रूप में वाचन करने में त्रुटि की - उच्च न्यायालय के लिए अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन के संस्वीकृति वाले भाग को अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य से संपुष्ट करने का कोई प्रश्न ही नहीं था- इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए था कि एक चिकित्सक तथ्य

का साक्षी नहीं है- ऐसे विशेषज्ञ का साक्ष्य एक सलाह के चरित्र का होता है- किसी अभियुक्त को केवल अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य के आधार पर हत्या के अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है- इसके अतिरिक्त, पंच साक्षियों के कथन विश्वसनीय नहीं हैं। उनमें से अधिकांश पक्षद्रोही हो गए- अपीलार्थी की निशानदेही पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत सुसंगत और ग्राह्य तथ्य का खोज स्थापित नहीं हुआ है - इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद को लागू करने में गलती की - अपीलार्थी दोषमुक्त [कण्डिका 24,25,28,29,52]

दण्ड विधान, 1860 - धारा 300 का अपवाद 4 - कब लागू नहीं किया जा सकता - विवेचना की गई।
[कण्डिका 40-43, 48-50]

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27, 8 - की आलिप्तता - धारा 27 की आलिप्तता के लिए आवश्यक शर्तें - विवेचना की गई। [कण्डिका 33,36]

साक्ष्य - विशेषज्ञ साक्षी का - प्रकृति - सलाहकारी :

अभिनिर्धारित : विशेषज्ञ साक्षी की जाँच अभियोजन पक्ष द्वारा कुछ विषयों पर उसके विशेष ज्ञान के कारण की जाती है, जिसका आकलन करने के लिए न्यायाधीश पूरी तरह से सुसज्जित नहीं हो सकता है- ऐसे विशेषज्ञ का साक्ष्य एक सलाहकार चरित्र का होता है - विशेषज्ञ साक्षी की विश्वसनीयता उसके निष्कर्षों के समर्थन में दिए गए कारणों के साथ-साथ उन निष्कर्षों के आधार बनाने वाले आंकड़ों और सामग्री पर निर्भर करती है। [कण्डिका 28]

उद्धृत किए गए निर्णय विधि

निसार अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1957] 1 एस. सी. आर. 657 : 1957 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 42; फद्दी बनाम एम. पी. राज्य [1964] 6 एस. सी. आर. 312 : 1964 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 123; अघनू नगेसिया बनाम बिहार राज्य [1966] 1 एस.सी.आर. 134 : 1965 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 109; मुरली बनाम राजस्थान राज्य [2009] 13 एस.सी.आर. 378 : (2009) 9 एस.सी.सी. 417; ए. एन. वेंकटेश व एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2005) 7 एस. सी. सी. 714; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम रायवरपु पुन्नय्या व एक अन्य [1977] 1 एस.सी.आर. 601 : (1976) 4 एस.सी.सी. 382; बुधि सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [2012] 11 एस.सी.आर. 848 : (2012) 13 एस. सी. सी. 663; किकर सिंह बनाम राजस्थान राज्य [1993] 3 एस.सी.आर. 696 : (1993) 4 एस. सी. सी. 238; सुरैन सिंह बनाम पंजाब राज्य [2017] 2 एस. सी. आर. 824 : (2017) 5 एस. सी. सी. 796- का अवलंब लिया गया।

अधिनियमों की सूची

साक्ष्य अधिनियम 1872; दण्ड विधान, 1860

मुख्य शब्दों की सूची

संस्वीकृति वाला प्रथम सूचना प्रतिवेदन; साक्ष्य में संस्वीकृति वाला प्रथम सूचना प्रतिवेदन ग्राह्य नहीं है; दण्ड विधान, 1860 की धारा 302 से धारा 304 भाग I में दोषसिद्धि में बदलाव; किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष संस्वीकृति; अभियुक्त द्वारा दर्ज संस्वीकृति वाले प्रकृति का प्रथम सूचना प्रतिवेदन; पुलिस के समक्ष अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति; प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री पर साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25 लागू होगा; हत्या; प्रेमिका के बारे में अक्षील टिप्पणी; धारा 27, साक्ष्य अधिनियम, 1872; धारा 8, साक्ष्य अधिनियम, 1872; प्रथम सूचना प्रतिवेदन के संस्वीकृति वाले भाग का चिकित्सकीय साक्ष्य से संपोषण; चिकित्सक तथ्य का साक्षी नहीं; विशेषज्ञ साक्षी; धारा 300, दण्ड विधान, 1860 में अपवाद 4 का गलत अनुप्रयोग; पंच साक्षी पक्षद्रोही हो गए; अभियुक्त के विरुद्ध गैर - संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन ग्राह्य है।

प्रकरण उद्भूत

दाण्डिक अपील अधिकारिता : दाण्डिक अपील सं. 3343/2025

दाण्डिक अपील सं. 1538/2021 में उच्च न्यायालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर के 16.01.2025 दिनांकित निर्णय व आदेश से

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलार्थियों की ओर से अधिवक्तागण :

ए. सिराजुद्दीन, वरिष्ठ, सुश्री मंजीत चावला, विशेष वक्ता, सुश्री शेख सोनी अहमद, सुश्री किरण बाला अग्रवाल।

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्तागण :

सुश्री सुगंधा जैन, प्रबोध कुमार।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय /आदेश

निर्णय

जे. बी. पर्दीवाला

व्याख्या की सुविधा के लिए, इस निर्णय को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है:-

अनुक्रमणिका

क. तथ्यात्मक आव्यूह	2
ख. विश्लेषण	6

* ****नोट : पृष्ठांकन मूल निर्णय के अनुरूप किया गया है।

क. संस्वीकृति वाला प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है	7
ख. किसी विशेषज्ञ साक्षी का साक्ष्य प्रकृति में केवल सलाहकारी होता है	20
ग. 1872 के अधिनियम की धारा 27 और 8 का आलिसता	22
घ. भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 का गलत अनुप्रयोग	25

ग. निष्कर्ष 34

1. अनुमति दी गई।

2. यह अपील 2021 की दण्डिक अपील सं. 1538/2021 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा पारित 16.01.2025 दिनांकित निर्णय (एतस्मिन् पश्चात् "आक्षेपित निर्णय" के रूप में संदर्भित) व आदेश से उद्भूत होती है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश के विरुद्ध यहाँ अपीलार्थी द्वारा की गई अपील को भारतीय दण्ड विधान, 1860 (संक्षेप में, "भा.द.वि.") की धारा 302 से भा.द.वि. की धारा 304 भाग I में अपीलार्थी की दोषसिद्धि को विरुद्ध परिवर्तित कर आंशिक रूप से स्वीकार किया गया था ।

क. तथ्यात्मक आव्यूह

3. अपीलार्थी (मूल अभियुक्त) ने स्वयं कोरबा कोतवाली पुलिस स्टेशन, जिला कोरबा में एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन (प्र. सू. प्र./ एफ. आई. आर.) दर्ज कराई, जो भा.द.वि. की धारा 303 के तहत दण्डनीय अपराध के लिए दर्ज की गई। प्रथम सूचना प्रतिवेदन इस प्रकार है:

“भा.द.वि. की धारा 302 और 380 के तहत अपराध के लिए अपराध संख्या 0/19 में नालिशी सं. प्राप्त करने हेतु चौकी प्रभारी के आदेश पर 27.09.2019 कोत् में कोटवाली थाना आया। नालिशी में बताया गया है कि मैं पंप हाउस, कोरबा के पास स्थित अपने रिश्तेदार राजनाथ यादव के घर में रह रहा हूँ। मैं दूध आपूर्तिकर्ता के रूप में अपनी आजीविका कमाता हूँ। मैंने पिछले कुछ दिनों से राम बाबू शर्मा, ठेकेदार के साथ कार्य करना शुरू किया था। राम बाबू शर्मा मुझे अपने घर पर शराब पीने के लिए फोन करता था। राम बाबू ने मुझे 24.09.2019 को अपने घर पर आमंत्रित किया। मैं रात करीब साढ़े नौ बजे परशुराम नगर स्थित उसके घर गया। हम दोनों बैठकर पीए। इस बीच मैंने अपने मोबाइल फोन से अपनी प्रेमिका की तस्वीर दिखाई। फिर उसने कहा कि अपनी प्रेमिका को मेरे घर ले आओ और उसे

एक रात के लिए मेरे साथ छोड़ दो। यह सुनकर हमारे बीच झगड़ा शुरू हो गया और हम झगड़ने लगे। फिर मैंने उसके घर में सब्जियां काटने के लिए रखा चाकू उठाया और गुस्से में उसकी गर्दन और पेट पर वार किया और उसके सिर, पैरों और गुप्त भाग पर लकड़ी के लट्ठ से मारकर उसकी हत्या कर दी। इसके बाद मैंने उसके शव को बिस्तर के पास घसीटा और उसे एक कपड़े से ढक दिया जो मैंने एक अलमारी से निकाला था। फिर मैंने उसके कमरे में तोड़फोड़ की और बोलेरो गाड़ी की चाबियाँ और उसका पर्स ले लिया जिसमें रु. 7000 थे। मैंने कमरे को बाहर से बंद कर दिया और बोलेरो को बाहर ले आया और मुख्य दरवाजे को बंद कर दिया और बोलेरो में बिलासपुर की ओर भागा। बिलासपुर से आगे रायपुर रोड पर मेरे साथ एक दुर्घटना हो गई। जब सुबह मुझे होश आया तो मैंने खुद को सारगाँव अस्पताल में पाया जहाँ मेरी माता और युवराज यदु उपलब्ध थे। आज सुबह अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद मैं कोरबा आया। मैंने घटना के बारे में अपने मौसा राजनाथ यादव, राहुल चौधरी और अनुज यादव को सूचित किया और सी. एस. ई. बी. चौकी को भी सूचित किया। फिर मैं पुलिस वालों के साथ राम बाबू के घर गया और शव दिखाया। मेरी वाहन दुर्घटना स्थल पर है। मैं रिपोर्ट कर रहा हूँ। अन्वेषण की जाए।"

4. ऊपर संदर्भित संबंधित पुलिस थाने में स्वयं अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज होने पर, अन्वेषण शुरू हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्वेषण अधिकारी, अपीलार्थी को गिरफ्तार करने के बाद, उसे मृतक के घर ले गया। घर में प्रवेश करने पर मृतक का शव उसके घर के अंदर खून से लथपथ पाया गया। पंच साक्षियों की उपस्थिति में अपराध स्थल का पंचनामा तैयार किया गया था। अपीलार्थी द्वारा मृतक को चोट पहुँचाने के लिए कथित रूप से इस्तेमाल किया गया चाकू घटना स्थल अर्थात् मृतक के घर से बरामद किया गया था। पंच साक्षियों की उपस्थिति में पंचनामा तैयार कर कपड़े और अन्य सामान भी एकत्र किए गए और रासायनिक विश्लेषण के लिए फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला भेजे गए। अपीलार्थी के कपड़े उसके कहने पर उसके चाचा, राजनाथ यादव के आवास से एक पंचनामा बनाकर पाए गए।

5. पंच साक्षियों की उपस्थिति में मृतक के शव का पंचनामा तैयार किया गया। तत्पश्चात् मृतक के शव को शव परीक्षण हेतु भेज दिया गया। शव परीक्षण प्रतिवेदन प्र.-अ.34 में मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. उसके माथे के दाहिने हिस्से में एक कटा हुआ घाव था, जिसका माप 6 x 2 से.मी. था, जो हड्डी तक गहरा था, ऊर्ध्वाधर स्थिति में था।

2. उसके माथे की बाईं ओर एक कटा हुआ घाव उपलब्ध था, जिसका आकार 3 x 1 से.मी. था, हड्डी तक गहरा, ऊर्ध्वाधर स्थिति में।

3. सिर की दाहिनी पार्श्विका हड्डी की त्वचा पर एक कटा हुआ घाव उपलब्ध था, जो हड्डी से 4 x 2 से.मी. गहरा था, ऊर्ध्वाधर स्थिति में।

4. बाईं पार्श्विका हड्डी की त्वचा पर एक कटा हुआ घाव उपलब्ध था, जो हड्डी तक गहराई में 5 x 2 से.मी. आकार का था, एक ऊर्ध्वाधर स्थिति में, जो पार्श्विका हड्डी के मध्य भाग में था।

5. इलियाक फोसा भाग में पेट के पूर्व भाग पर एक कटा हुआ घाव उपलब्ध था जिसका आकार 4 x 2 x 2 से.मी. था।

6. छाती के ऊपरी दाएँ भाग में, क्लैविकल हड्डी के नीचे एक कटा हुआ घाव उपलब्ध था, जिसका आकार फेफड़े के ऊपरी भाग तक 4 x 2 गहरा था।"

6. मृत्यु का कारण, जैसा कि शव परीक्षण प्रतिवेदन में बताया गया है और डॉ. आर. के. दिव्या (अ.सा.-10) द्वारा विधिवत साबित किया गया है, छाती के दाहिने हिस्से से अत्यधिक रक्तस्राव और दाहिने फेफड़े के ऊपरी हिस्से में क्षति के परिणामस्वरूप आघात (शॉक) था।

7. अन्वेषण पूर्ण होने पर, अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और ऊपरोक्त अपराध के लिए आरोप पत्र दायर करने का समापन सत्र प्रकरण सं. 9/2020 में हुआ।

8. सत्र न्यायाधीश, कोरबा ने अपीलार्थी के विरुद्ध ऊपर वर्णित अपराधों के लिए आरोप विरचित किए। अपीलार्थी ने आरोप के लिए दोषी नहीं होने की याचना की और विचारण का दावा किया। विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया :

i. अ.सा.-1, राहुल कुमार चौधरी, पंच साक्षी (पक्षद्रोही);

ii. अ.सा.-2 कमलेश कुमार, मृतक का पुत्र;

iii. अ.सा.-3 रविशंकर श्रीनिवास, पंच साक्षी;

iv. अ.सा.-4 रामप्रदीप शर्मा, पंच साक्षी

v. अ.सा.-5 रामनिवास शर्मा, पंच साक्षी;

vi. अ.सा.-6 जलाश्वर साकर, पंच साक्षी;

vii. अ.सा.-7 बी. आर. चौधरी, पुलिस साक्षी

viii. अ.सा.-8 सुदामा प्रसाद, पुलिस साक्षी

ix. अ.सा.-9 अशोक पांडे, पुलिस साक्षी

x. अ.सा.-10 डॉ. आर. के. दिव्या, चिकित्सा अधिकारी जिसने शव परीक्षण किया

xi. अ.सा.-11 हेमंत पाटले, पुलिस साक्षी

9. अभियोजन पक्ष ने कुछ दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए।

10. मौखिक साक्ष्य का दर्ज किया जाना पूर्ण होने पर, अपीलार्थी का आगे का कथन दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया था। अपने कथन में, अपीलार्थी ने दावा किया कि उसे कथित अपराध में गलत तरीके से फंसाया गया था और उसने पूरी तरह निर्दोष होने का दावा किया।

11. विचारण न्यायालय, अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दोनों के समग्र विश्लेषण उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष ने अपने प्रकरण को उचित संदेह से परे साबित कर दिया था, और तदनुसार, उसने अपीलार्थी को हत्या के अपराध में सिद्धदोषी किया और उसे आजीवन कारावास का दण्डादेश दिया।

12. विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित होने के कारण अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। उच्च न्यायालय ने आंशिक रूप से अपील को स्वीकार कर लिया और भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 का लाभ देते हुए अपीलार्थी की दोषसिद्धि को भा.द.वि. की धारा 302 से बदलकर भा.द.वि. की धारा 304 भाग 1 कर दिया।

13. ऊपर संदर्भित परिस्थितियों में अपीलार्थी वर्तमान अपील के साथ इस न्यायालय के समक्ष है।

ख. विश्लेषण

14. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के बाद एकमात्र प्रश्न जो हमारे विचारार्थ आता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करने में कोई त्रुटि की है।

15. उच्च न्यायालय के पूरे निर्णय को कई आधारों पर गलत कहा जा सकता है, आक्षेपित निर्णय में त्रुटियां स्पष्ट हैं। पहला गलत कदम यह था कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य की विस्तार से जांच की और फिर अपीलार्थी द्वारा स्वयं दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री के साथ इसकी सीधे पुष्टि करने के लिए आगे बढ़ा। ऐसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने खुद को

पूरी तरह से आश्वस्त किया कि एक संस्वीकृति के रूप में अपीलार्थी के कथन, जैसा कि प्रथम सूचना प्रतिवेदन में निहित है, पूरी तरह से चिकित्सकीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई थी। परिणामस्वरूप न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी ने कथित अपराध किया था। इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने में, उच्च न्यायालय ने आपराधिक न्यायशास्त्र के कुछ बुनियादी सिद्धांतों की अनदेखी की।

क. संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है।

16. प्रथम सूचना प्रतिवेदन को अन्वेषण अधिकारी अ.सा.-9, अशोक पांडे के मौखिक साक्ष्य के माध्यम से साक्ष्य (प्रदर्श P-14) में प्रदर्शित किया गया था। अ.सा.-9 ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन पर अपने हस्ताक्षर को साबित किया और पहले सूचना देने वाले अर्थात् अपीलार्थी के हस्ताक्षर की भी पहचान की। यद्यपि, अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य के माध्यम से प्रथम सूचना प्रतिवेदन की अन्य सामग्री साबित नहीं हो सकी थी। प्रथम सूचना प्रतिवेदन के एक सादे वाचन से संकेत मिलता है कि इसमें इसके निर्माता अर्थात् अपीलार्थी द्वारा कथित अपराध करने के संबंध में एक संस्वीकृति है।

17. प्रथम सूचना प्रतिवेदन में एक कथन का उपयोग आम तौर पर केवल भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 145 (संक्षेप में, "1872 का अधिनियम") की धारा 145 में यथा उपबंधित इसके निर्माता का खंडन करने के लिए किया जा सकता है, या 1872 के अधिनियम की धारा 157 में परिकल्पित उसके साक्ष्य की पुष्टि करने के लिए किया जा सकता है। यद्यपि, एक दृष्टिकोण विचारण में, इनमें से कोई भी तब तक संभव नहीं है जब तक कि कथन देने वाला प्रकरण में अभियुक्त है, जब तक कि वह खुद को साक्षी के रूप में परीक्षण के लिए प्रस्तुत नहीं करता है। [निसार अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1957 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 42 देखें]। जे. एल. कपूर, न्यायाधीश ने उस निर्णय में तीन-न्यायाधीशों की पीठ की ओर से कहा है:

“प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य का एक ठोस टुकड़ा नहीं है और इसका उपयोग केवल धारा 157, साक्ष्य अधिनियम के तहत निर्माता के कथन की पुष्टि करने या उस अधिनियम की धारा 145 के तहत उसके कथन खंडन करने के लिए किया जा सकता है। इसका उपयोग विचारण में निर्माता के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है यदि वह स्वयं अभियुक्त बन जाता है, न ही अन्य साक्षियों की पुष्टि या खंडन करने के लिए। अतः इस प्रकरण में यह साक्ष्य नहीं है।”

(जोर दिया गया)

18. उच्च न्यायालय इस न्यायालय के दो ऐतिहासिक निर्णय पर विचार करने में विफल रहा- एक फद्दी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1964 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 123 में, और दूसरा अघनू नगेसिया बनाम बिहार राज्य, 1965 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 109।

19. फद्दी (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने कहा कि:

“यदि अभियुक्त द्वारा दी गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन में साक्ष्य अधिनियम की धारा 17 में परिभाषित कोई संस्वीकृति है, तो अधिनियम की धारा 21 के तहत अनुमति के अनुसार उसके निर्माता के विरुद्ध इस तरह के संस्वीकृति का उपयोग करने पर कोई रोक नहीं है, बशर्ते कि ऐसी स्वीकृति चरित्र में दोषकारी नहीं है। निर्णय में माननीय न्यायमूर्तियों ने निसार अली प्रकरण [ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 366] को निम्नलिखित आधारों पर पृथक किया:

“परंतु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जिस संदर्भ में टिप्पणी की गई है और उन परिस्थितियों में, जिन्हें हमने उस प्रकरण के अभिलेख से सत्यापित किया है, कि सत्र न्यायाधीश ने निसार अली के विरुद्ध दोषमुक्त किए गए सह-अभियुक्त द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन को निश्चित रूप से अग्राह्य माना था, और यह कि उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इसका बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया है। यह टिप्पणी वास्तव में एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन को संदर्भित करता है जो इसके निर्माता द्वारा संस्वीकृति की प्रकृति में है। बेशक, एक संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन का उपयोग निर्माता के विरुद्ध तब नहीं किया जा सकता जब वह एक अभियुक्त हो और अनिवार्य रूप से सह-अभियुक्त के विरुद्ध इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है।”

(जोर दिया गया)

20. **अघनू नगेसिया** (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने चेतावनी दी है कि जब किसी अभियुक्त द्वारा दी गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन में दिए गए कथन में अपराध में आलिस करने वाले सामग्री है और उसमें से निर्दोषकारी हिस्से को निकालना मुश्किल है, तो इसे साक्ष्य से बाहर रखा जाना चाहिए।

21. **फद्दी** (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या अभियुक्त द्वारा स्वयं दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य में ग्राह्य थी। उक्त प्रकरण के तथ्यों में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन की ग्राह्यता पर आपत्ति सही नहीं थी क्योंकि प्रथम सूचना प्रतिवेदन में केवल कुछ स्वीकृति थीं और वे स्वीकृति संस्वीकृति के बराबर नहीं थी ताकि पूरी प्रथम सूचना प्रतिवेदन को साक्ष्य में अग्राह्य बना दिया जा सके। हम **फद्दी** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा की गई सुसंगत टिप्पणियों को नीचे उद्धृत करते हैं:

"14. अपीलार्थी के लिए यह तर्क दिया जाता है कि प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य में अग्राह्य था अतः इसे अभिलेख पर नहीं लिया जाना चाहिए था। समर्थन में, निसार अली बनाम यू. पी. राज्य [ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 366] के रूप में प्रतिवेदित प्रकरण पर निर्भरता रखी गई है। हमने इस तर्क पर विचार किया है और इसमें कोई बल नहीं पाते हैं।

15. प्रतिवेदन अपीलार्थी की संस्वीकृति नहीं है। यह अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी को दिया गया कथन नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 इसकी ग्राह्यता को बाधित नहीं करती हैं। प्रतिवेदन अभियुक्त द्वारा कुछ तथ्यों की स्वीकृति है जो न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले प्रश्न पर असर डालते हैं जैसे कि गुलाब की हत्या कैसे और किसके द्वारा की गई थी, या क्या न्यायालय में अपीलार्थी का कथन अभियोजन पक्ष के साक्षियों के कुछ कथनों की शुद्धता से इनकार करना सही है या नहीं। अधिनियम की धारा 21 के तहत साक्ष्य में स्वीकृति ग्राह्य है। धारा 17 एक प्रविष्टि को एक कथन, मौखिक या वृत्तचित्र के रूप में परिभाषित करती है, जो मुद्दे या सुसंगत तथ्य में किसी भी तथ्य के रूप में किसी भी निष्कर्ष का सुझाव देता है, और जो किसी भी व्यक्ति द्वारा और उसके बाद अधिनियम में उल्लिखित परिस्थितियों में किया जाता है। धारा 21 में उपबंधित है कि स्वीकृति सुसंगत हैं और उन्हें बनाने वाले व्यक्ति के विरुद्ध साबित किया जा सकता है। धारा 21 के उदाहरण (ग), (घ) और (ङ) उन परिस्थितियों के हैं जिनमें एक अभियुक्त स्वयं

के स्वीकृति को साबित कर सकता है जो धारा 21 में उल्लिखित अपवादों को ध्यान में रखते हुए उसके पक्ष में जाते हैं कि स्वीकृति उस व्यक्ति द्वारा साबित नहीं किया जा सकता है जो उन्हें बनाता है। अतः यह स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त की स्वीकृति उसके विरुद्ध साबित की जा सकती है।

16. प्रिवी काउंसिल, बहुत समान परिस्थितियों में, बहुत पहले दल सिंह बनाम राजा सम्माट [एल. आर. 44 आई. ए. 137] में इस तरह की प्रथम सूचना प्रतिवेदन को साक्ष्य में ग्राह्य माना है। उस प्रकरण में पृष्ठ 142 में यह कहा गया था:

“विचारण में अपना कथन देते समय दल सिंह द्वारा बताई गई कहानी की तुलना उस प्रतिवेदन से करना महत्वपूर्ण है जो उन्होंने उस दस्तावेज में पुलिस को दी थी जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे, एक ऐसा दस्तावेज जो पर्याप्त रूप से प्रमाणित है। प्रतिवेदन स्पष्ट रूप से ग्राह्य है। यह किसी भी मायने में एक संस्वीकृति नहीं थी। जैसा कि इसकी शर्तों से पता चलता है, यह हरदुआ से जुब्बलपुर जाते समय दल सिंह पर कथित प्रहार के संबंध में मोहन और झुन्नी के विरुद्ध दी गई जानकारी या आरोप की प्रकृति में था। इस प्रकार यह कथन उनके विरुद्ध उचित साक्ष्य है.....

यह पाया जाता है कि यह कथन कई बिंदुओं पर दल सिंह द्वारा बाद में न्यायालय में कही गई बातों से पूरी तरह से भिन्न है। सत्र न्यायाधीश ने दस्तावेज को उनके बचाव को बदनाम करने वाला माना। उन्हें अभियोजन पक्ष की कहानी और दल सिंह की कहानी के मध्य निर्णय करना था।”

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि उस प्रकरण के तथ्य कुछ मामलों में इस प्रकरण के तथ्यों से अलग थे। इस तरह के विभेद, यदि कोई हो, का प्रतिवेदन की ग्राह्यता के प्रश्न पर कोई असर नहीं पड़ता है। प्रतिवेदन को ग्राह्य माना गया क्योंकि यह एक संस्वीकृति नहीं थी और यह न्यायालय के समक्ष

मामले को निर्धारित करने में सहायक थी।

17. निसार अली प्रकरण [ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 366] में न्यायालय की ओर से बोलने वाले कपूर, न्यायाधीश ने तथ्यों का वर्णन करने के बाद कहा:

“इस प्रतिवेदन की ग्राह्यता पर आपत्ति जताई गई है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई थी जो सह-अभियुक्त था। प्रथम सूचना प्रतिवेदन साक्ष्य का एक ठोस टुकड़ा नहीं है और इसका उपयोग केवल धारा 157, साक्ष्य अधिनियम के तहत निर्माता के कथन की पुष्टि करने या उस अधिनियम की धारा 145 के तहत इसका खंडन करने के लिए किया जा सकता है। इसका उपयोग विचारण में निर्माता के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है यदि वह स्वयं अभियुक्त बन जाता है, न ही अन्य साक्षियों की पुष्टि करने या उनका खंडन करने के लिए। इस प्रकरण में, अतः यह साक्ष्य नहीं है।”

इन टिप्पणियों पर अपीलार्थी के लिए यह तर्क दिया गया है कि उसकी प्रतिवेदन साक्ष्य में अग्राह्य थी। जाहिर तौर पर, अभिव्यक्ति 'इसका उपयोग विचारण में निर्माता के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं किया जा सकता है यदि वह खुद आरोपी बन जाता है' अपीलार्थी के तर्क का समर्थन करता है। परन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जिस संदर्भ में अवलोकन अभिनिर्धारित किया जाता है गया है और उन परिस्थितियों में, जिन्हें हमने उस प्रकरण के अभिलेख से सत्यापित किया है कि सत्र न्यायाधीश ने निसार अली के विरुद्ध अग्राह्य होने के लिए दोष मुक्त गए सह-अभियुक्त द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन को निश्चित रूप से माना था, और यह कि उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इसका बिल्कुल भी उल्लेख नहीं अभिनिर्धारित किया जाता है था, यह टिप्पणी वास्तव में एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन को संदर्भित करता है जो इसके निर्माता द्वारा संस्वीकृति की प्रकृति में है। बेशक एक संस्वीकृति वाले प्रथम सूचना प्रतिवेदन का उपयोग निर्माता के विरुद्ध तब नहीं किया जा सकता जब वह एक अभियुक्त हो और अनिवार्य रूप से सह-अभियुक्त के विरुद्ध इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त अवलोकन का अंतिम दण्ड महत्वपूर्ण है और इंगित

करता है कि न्यायालय का क्या मतलब था कि सह-अभियुक्त कुदरतुल्ला द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन निसार अली के विरुद्ध साक्ष्य नहीं थी। इस न्यायालय का यह अर्थ नहीं था- जैसा कि उसे उस प्रकरण में निर्धारित नहीं करना था-कि एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन जो संस्वीकृति नहीं है, का उपयोग साक्ष्य अधिनियम की धारा 21 के तहत या उस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधानों के तहत एक सुसंगत कथन के रूप में नहीं किया जा सकता है। हम यह भी पाते हैं कि इस अवलोकन को राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा राज्य बनाम बालचंद [ए. आई. आर. 1960 राज 101] और राजस्थान राज्य बनाम शिव सिंह [ए. आई. आर. 1962 राज 3] और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अल्लाहदिया बनाम राज्य [1959 ऑल एल. जे. 340] में इस तरह से समझा गया है।

18. अतः हमारा मानना है कि अपीलार्थी द्वारा दायर प्रथम सूचना प्रतिवेदन की ग्राह्यता पर आपत्ति सही नहीं है और अधीनस्थ न्यायालयों ने इसे साक्ष्य में सही रीति से स्वीकार किया है और इसका उचित उपयोग किया है।"

(जोर दिया गया)

22. अब हम **अघनू नगेसिया** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय पर गौर करने के लिए आगे बढ़ते हैं। कण्डिका 9 से 18 में इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियां सुसंगत हैं और नीचे उद्धृत की गई हैं:-

"9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 अभियुक्त द्वारा किए गए संस्वीकृति वाले बयानों से संबंधित विधि के उपबंधों में से एक है। संस्वीकृति से संबंधित विधि आम तौर पर एस. एस. में पाया जाता है। साक्ष्य अधिनियम और एस. एस. के 24 से 30 तक। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 162 और धारा 164। साक्ष्य अधिनियम की धारा 17 से 31 को "स्वीकृति" शीर्षक के तहत पाया जाना है। कन्फेशन स्वीकृति की एक प्रजाति है, और इसे एस. एस. में निपटाया गया है। 24 से 30 तक। संस्वीकृति या संस्वीकृति इसके निर्माता के विरुद्ध साक्ष्य है, जब तक कि इसकी ग्राह्यता को विधि के कुछ प्रावधानों द्वारा बाहर नहीं किया जाता है। धारा 24 में कुछ प्रलोभनों, धमकियों और वादों के कारण होने वाली संस्वीकृति सम्मिलित नहीं है। धारा 25 में उपबंधित है: "पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई कोई भी संस्वीकृति अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध साबित नहीं की जाएगी। धारा 25 के शब्द आज्ञापक हैं। किसी भी परिस्थिति में

पुलिस अधिकारी के समक्ष किया गया संस्वीकृति वाला कथन अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। इसमें उस समय की गई संस्वीकृति सम्मिलित है जब वह मुक्त था और पुलिस अभिरक्षा में नहीं था, साथ ही किसी भी अन्वेषण शुरू होने से पहले की गई संस्वीकृति भी सम्मिलित है।

"किसी भी अपराध का अभियुक्त" अभिव्यक्ति विचारण में अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को सम्मिलित करती है चाहे उस पर अपराध का आरोप लगाया गया हो या नहीं जब उसने संस्वीकृति दी थी। धारा 26 किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में उसके द्वारा किए गए कबूलनामे के सबूत को प्रतिबंधित करती है, जब तक कि यह मजिस्ट्रेट की तत्काल उपस्थिति में नहीं किया जाता है। धारा 26 द्वारा अधिरोपित आंशिक प्रतिबंध किसी पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के सामने किए गए संस्वीकृति से संबंधित है। धारा 26 किसी पुलिस अधिकारी के सामने किए गए संस्वीकृति पर धारा 25 द्वारा अधिरोपित पूर्ण प्रतिबंध को योग्य नहीं बनाती है। धारा 27 एक परंतुक के रूप में है, और धारा 24, 25 और 26 द्वारा अधिरोपित प्रतिबंध को आंशिक रूप से हटा देती है। यह उपबंधित करती है कि जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी, चाहे वह संस्वीकृति की कोटी में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 किसी भी व्यक्ति द्वारा अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी को दिए गए किसी भी कथन का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए अन्वेषण के तहत अपराध के संबंध में किसी भी अन्वेषण या विचारण में करने से मना करती है, सिवाय उनके जो परंतुक में उल्लिखित हैं या और उप-धारा (2) के तहत आने वाले मामलों में और यह विशेष रूप से उपबंधित करता है कि इसमें कुछ भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगा। धारा 162 के शब्द इतने व्यापक हैं कि अन्वेषण के

दौरान किसी पुलिस अधिकारी के सामने की गई संस्वीकृति को सम्मिलित कर सकते हैं। अन्वेषण के दौरान दिया गया कथन या संस्वीकृति मजिस्ट्रेट द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज की जा सकती है, जो धारा द्वारा अधिरोपित सुरक्षा उपायों के अधीन है। इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उपबंध को छोड़कर, किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष किसी अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के तहत पूरी तरह से संरक्षित है, और यदि यह अन्वेषण के क्रम में की जाती है, यह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 द्वारा भी संरक्षित है, और पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए उसके द्वारा किए गए किसी अन्य व्यक्ति के प्रति संस्वीकृति को धारा 26 द्वारा संरक्षित किया जाता है, जब तक कि यह मजिस्ट्रेट की तत्काल उपस्थिति में नहीं किया जाता है। यह प्रावधान इस दृष्टिकोण पर आगे बढ़ते प्रतीत होते हैं कि एक अभियुक्त द्वारा एक पुलिस अधिकारी को दिए गए या एक पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए उसके द्वारा किए गए इकबालिया बयानों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, और उनके विरुद्ध साक्ष्य में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। वे सार्वजनिक नीति के आधार पर आधारित हैं और उन पर पूरा प्रभाव डाला जाना चाहिए।

10. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 में प्रथम सूचना दर्ज करने का प्रावधान है। इस तरह की सूचना रिपोर्ट ठोस साक्ष्य नहीं है। इसका उपयोग साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के तहत सूचना देने वाले की पुष्टि करने के लिए या अधिनियम की धारा 145 के तहत उसका खंडन करने के लिए किया जा सकता है, यदि सूचना देने वाले को साक्षी के रूप में बुलाया जाता है। यदि प्रथम सूचना स्वयं अभियुक्त द्वारा दी जाती है, तो उसके द्वारा जानकारी देने का तथ्य साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत उसके आचरण के साक्ष्य के रूप में उसके विरुद्ध ग्राह्य है। यदि जानकारी एक गैर-इकबालिया कथन है, तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 21 के तहत अभियुक्त के विरुद्ध स्वीकार करने योग्य है और सुसंगत है, फद्दी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, क्रि. अपील सं. 210/ 1963 दिनांक

24-1-1964:(ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1850), निसार अली बनाम की व्याख्या करने वाले उत्तर प्रदेश राज्य, (एस) ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 366 और दल सिंह बनाम राजा सम्राट, 44 इंड ऐप 137(ए. आई. आर. 1917 पीसी 25) देखें। परन्तु साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 को देखते हुए अभियुक्त के विरुद्ध एक पुलिस अधिकारी को इकबालिया प्रथम सूचना रिपोर्ट का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

11. भारतीय साक्ष्य अधिनियम "संस्वीकृति" को परिभाषित नहीं करता है। लंबे समय तक, भारत में न्यायालयों ने स्टीफन के 'डाइजैस्ट ऑफ द लॉ ऑफ एविडेंस' के अनुच्छेद 22 में दी गई "संस्वीकृति" की परिभाषा को अपनाया। उस परिभाषा के अनुसार अपराध का आरोप लगाने वाले व्यक्ति द्वारा किसी भी समय की गई स्वीकृति को संस्वीकृति कहा जाता है, जिसमें कहा जाता है कि उसने उस अपराध को किया है। इस परिभाषा को न्यायिक समिति द्वारा पाकला नारायणस्वामी बनाम सम्राट, 66 इंड ऐप 66 पृष्ठ 81:(ए. आई. आर. 1939 पी. सी. 47 पृष्ठ 52 पर)। लॉर्ड एटकिन ने कहा:

“.....आत्म-दंडात्मक विषय वाला कोई भी कथन संस्वीकृति के बराबर नहीं हो सकता है, यदि दंडात्मक कथन कुछ तथ्य का है जो यदि सच है तो कथित अपराध को स्वीकार किए जाने के लिए नकारात्मक होगा। इसके अलावा, एक संस्वीकृति को या तो अपराध के संदर्भ में स्वीकार करना चाहिए, या किसी भी तरह से उन सभी तथ्यों को स्वीकार करना चाहिए जो अपराध का गठन करते हैं। गंभीर रूप से दोषारोपण करने वाले तथ्य की स्वीकृति, यहां तक कि एक निर्णायक रूप से दोषारोपण करने वाला तथ्य भी, अपने आप में एक संस्वीकृति नहीं है, उदाहरण के लिए, एक संस्वीकृति कि अभियुक्त चाकू या रिवॉल्वर का मालिक है और हाल ही में उसके कब्जे में था,

जिसके कारण किसी अन्य व्यक्ति के कब्जे की कोई व्याख्या किए बिना मृत्यु हो गई।” इन टिप्पणियों को पलविंदर कौर बनाम पंजाब राज्य (1), 1953 एस. सी. आर. 94 पृष्ठ 104 (ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 354 पृष्ठ 357 पर) में इस न्यायालय की मंजूरी मिली। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय, (1961) 1 एस. सी. आर. 14 पृष्ठ 21:(ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 1125 पृष्ठ 1128-1129)। शाह, न्यायाधीश ने एक संस्वीकृति को एक व्यक्ति द्वारा दिए गए कथन के रूप में संदर्भित किया जिसमें कहा गया है कि उसने एक अपराध किया है।

12. संक्षेप में, एक संस्वीकृति को अपराध के लिए आरोपित व्यक्ति द्वारा अपराध की स्वीकृति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक कथन जिसमें आत्म-व्याख्यात्मक विषय सम्मिलित है, एक संस्वीकृति के बराबर नहीं हो सकता है, यदि दोषमुक्ति कथन कुछ तथ्य का है, जो यदि सच है, तो कथित अपराध को स्वीकार करने के लिए नकारात्मक होगा। यदि किसी अभियुक्त के प्रवेश का उपयोग उसके विरुद्ध किया जाना है, तो यह पूरा साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए और यदि प्रवेश का हिस्सा दोषमुक्ति और आंशिक रूप से दोषारोपण करने वाला है, तो अभियोजन पक्ष को साक्ष्य में केवल दोषारोपण करने वाले भाग का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं है। हनुमंत गोविंद बनाम एम. पी. राज्य 1952 एस. सी. आर. 1091 पृष्ठ 1111:(ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 343 पृष्ठ 350) और 1953 एस. सी. आर. 94:(ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 354) देखें। अभियुक्त को इस बात पर जोर देने का अधिकार है कि दोषमुक्ति भाग सहित संपूर्ण संस्वीकृति को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। परन्तु यह सिद्धांत अभियुक्त के लिए कोई सहायता नहीं है जहां उसके कथन भाग कोई भी हिस्सा आत्म-व्याख्यात्मक नहीं है और अभियोजन पक्ष अभियुक्त के विरुद्ध पूरे कथन का उपयोग करने की मंशा

रखता है।

13. अब, एक संस्वीकृति में कई भाग हो सकते हैं और यह न केवल अपराध के वास्तविक कार्य को प्रकट कर सकता है, परन्तु उद्देश्य, तैयारी, अवसर, उकसावे, उपयोग किए गए हथियारों, आशय , हथियार को छिपाने और अभियुक्त के बाद के आचरण को भी प्रकट कर सकता है। यदि संस्वीकृति दूषित है तो दाग उसके प्रत्येक भाग से जुड़ जाता है। विधि में एक भाग को अलग करने और इसे गैर-इकबालिया कथन के रूप में साक्ष्य में स्वीकार करने की अनुमति नहीं है। प्रत्येक भाग कुछ अपराध में आलिस करने वाले तथ्य का खुलासा करता है, अर्थात, कुछ तथ्य जो स्वयं या अन्य स्वीकृत या सिद्ध तथ्यों के साथ इस निष्कर्ष का सुझाव देते हैं कि अभियुक्त ने अपराध किया था, और यद्यपि प्रत्येक भाग को अकेले संस्वीकृति के रूप में नहीं लिया जा सकता है, उनमें से प्रत्येक एक इकबालिया संस्वीकृति कथन कथन का हिस्सा होने के नाते एक संस्वीकृति के चरित्र का हिस्सा है। यदि किसी कथन में किसी अपराध की स्वीकृति है, तो न केवल वह स्वीकृति परन्तु कथन में निहित एक दोषपूर्ण तथ्य की हर अन्य स्वीकृति भी संस्वीकृति का भाग है।

14. यदि संस्वीकृति के प्रमाण को साक्ष्य अधिनियम की धारा 24, धारा 25 और धारा 26 जैसे विधि के किसी भी उपबंध द्वारा बाहर रखा जाता है, तो मामूली अपराधकारी तथ्यों के प्रवेश सहित इसके सभी भागों में पूरे संस्वीकृति वाले कथन को भी बाहर रखा जाना चाहिए, जब तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत किसी अन्य धारा द्वारा इसके प्रमाण की अनुमति नहीं दी जाती है। धारा 24, धारा 25 और 26 में बहुत कम पदार्थ और सामग्री बची होगी यदि संस्वीकृति वाले कथन में अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों को स्वीकार करने के प्रमाण की अनुमति है।

15. कभी-कभी, एक कथन में एक भी वाक्य संस्वीकृति नहीं हो सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 301-क के तहत आरोपित व्यक्ति का प्रकरण और उसके द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को दिए गए कथन को लें कि "में

नशे में था: मैं 80 मील प्रति घंटे की गति से गाड़ी चला रहा था। मैं सड़क पर 80 गज की दूरी पर ए को देख सकता था; मैंने हॉर्न नहीं बजाया: मैंने कार को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया; कार ने 'ए' को टक्कर मार दी। इस कथन में कोई भी दण्ड संस्वीकृति के बराबर नहीं है, परन्तु संपूर्ण रूप से पढ़ा गया कथन भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304-क के तहत अपराध की संस्वीकृति के बराबर है, और प्रत्येक दण्ड को अलग से एक गैर-इकबालिया कथन के रूप में साक्ष्य में स्वीकार करने की अनुमति नहीं होगी। एक बार फिर, एक ऐसे प्रकरण को लें जहां एक कथन में एक दण्ड एक अपराध को स्वीकार करने के बराबर हो। 'ए' कहता है 'मैंने 'बी' को टांगी से मारा और उसे चोट पहुंचाई। क्षति के परिणामस्वरूप 'बी' की मृत्यु हो गई। 'ए' ने एक अपराध किया है और भारतीय दण्ड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत आरोप लगाया जा सकता है। जब तक वह अपने प्रकरण को मान्यता प्राप्त अपवादों में से किसी एक के भीतर नहीं लाता है, तब तक उसका कथन अपराध को स्वीकार करने के बराबर है, परन्तु कथन के अन्य भाग जैसे कि मकसद, तैयारी, उकसावे की अनुपस्थिति, हथियार को छिपाना और बाद का आचरण, सभी अपराध की गंभीरता और अभियुक्त के आशय और ज्ञान पर प्रकाश डालते हैं, और निजी बचाव, दुर्घटना और अन्य संभावित बचाव के अधिकार को नकारते हैं। संस्वीकृति वाले कथन में अपराध में आलिस करने वाले तथ्य की प्रत्येक स्वीकृति संस्वीकृति का हिस्सा है।

16. यदि संस्वीकृति साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 द्वारा अनुध्यात किसी प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण होती है, तो पूरे संस्वीकृति को धारा 24 द्वारा बाहर रखा जाता है। धारा 24 द्वारा न केवल अपराध को स्वीकार करने का प्रमाण परन्तु उद्देश्य, तैयारी और उसके बाद के आचरण जैसे हर अन्य अपराध में आलिस करने वाले तथ्य को भी स्वीकार करने का प्रमाण सम्मिलित नहीं किया गया है। यह अभिनिर्धारित करना कि अन्य अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों को स्वीकार करने का प्रमाण धारा 24 द्वारा वर्जित नहीं है, खंड की व्यावहारिक उपयोगिता और विषय-वस्तु को

लूटना है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि धारा 24 का प्रतिबंध अन्य प्रवेशों पर लागू नहीं होता है, परन्तु यद्यपि साक्ष्य में प्राप्य है, परन्तु उनका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वे प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण हुए थे। इस सुझाव के अनुसार, अन्य प्रवेश सुसंगत हैं परन्तु उनका कोई मूल्य नहीं है। परन्तु हम सोचते हैं कि धारा 24 के एक सादे निर्माण पर, एक इकबालिया संस्वीकृति कथन कथन में निहित अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों के सभी स्वीकारों के प्रमाण को धारा द्वारा बाहर रखा गया है। इसी तरह, धारा 25 और 26 न केवल एक अभियुक्त द्वारा किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष अपराध को स्वीकार करने या किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए उसके द्वारा किए गए अपराध के प्रमाण को रोकते हैं, परन्तु अपराध से संबंधित सभी अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों की संस्वीकृति वाले कथन में निहित संस्वीकृति को भी निषिद्ध करते हैं।

17. थोड़ा विचार करने से पता चलेगा कि धारा 24 से 30 में अभिव्यक्ति "संस्वीकृति" समग्र रूप से कथन जिसमें न केवल अपराध की स्वीकृति सम्मिलित है, परन्तु अपराध से संबंधित अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों की अन्य सभी स्वीकृति भी सम्मिलित हैं, को संदर्भित करता है। धारा 27 धारा 24, 25 और 26 द्वारा अधिरोपित प्रतिबंध को इतनी अधिक जानकारी के संबंध में इस सीमा तक हटा देती है कि यह एक संस्वीकृति है या नहीं, जैसा कि जानकारी के परिणामस्वरूप पाए गए तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, यदि धारा की अन्य शर्तें पूरी हो जाती हैं। धारा 27 स्पष्ट रूप से विचार करती है कि एक खोज की ओर ले जाने वाली जानकारी अभियुक्त की संस्वीकृति का एक हिस्सा हो सकती है और इस प्रकार धारा 24, 25 और 26 के दायरे में आती है। इस प्रकार धारा 27 से पता चलता है कि अपराध को स्वीकार करने वाले संस्वीकृति वाले कथन में संस्वीकृति वाले कथन के भाग के रूप में अतिरिक्त जानकारी हो सकती है। पुनः, धारा 30 न्यायालय को एक सह-अभियुक्त के विरुद्ध दूसरे अभियुक्त के संस्वीकृति वाले कथन के विरुद्ध विचार करने की अनुमति देती है जो न केवल उसे परन्तु अन्य सह-अभियुक्त को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार, धारा 30 से पता चलता है कि अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले मामले स्वीकारोक्ति का

हिस्सा हो सकते हैं।

18. यदि अभियुक्त द्वारा प्रथम सूचना प्रतिवेदन किसी पुलिस अधिकारी को दी जाती है और यह एक संस्वीकृति वाले कथन के बराबर है, तो धारा 25 द्वारा संस्वीकृति का प्रमाण निषिद्ध है। संस्वीकृति में न केवल अपराध को स्वीकार करना सम्मिलित है, परन्तु संस्वीकृति वाले कथन में निहित अपराध से संबंधित अन्य सभी अपराध में आलिस करने वाले तथ्यों को स्वीकार करना भी सम्मिलित है। संस्वीकृति वाले कथन का कोई भी हिस्सा साक्ष्य के रूप में प्राप्य नहीं है, सिवाय इसके कि धारा 25 का प्रतिबंध धारा 27 द्वारा हटा लिया गया है।"

(जोर दिया गया)

23. अतः विधिक स्थिति यह है- प्रकरण में अभियुक्तों में से एक द्वारा प्रस्तुत प्रथम सूचना प्रतिवेदन में निहित कथन का उपयोग किसी भी तरह से किसी अन्य अभियुक्त के विरुद्ध नहीं किया जा सकता है। यहाँ तक कि इसका उपयोग प्रथम सूचना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने वाले अभियुक्त के विरुद्ध भी नहीं किया जा सकता है यदि उसकी प्रकृति दोषकारी हो। इसका उपयोग संपोषण या विरोधाभास के उद्देश्य से किया जा सकता है। इसका बहुत सीमित उपयोग, 1872 के अधिनियम की धारा 21 के तहत एक स्वीकृति के रूप में, केवल इसके निर्माता के विरुद्ध है, और केवल तभी जब स्वीकृति संस्वीकृति के बराबर न हो।

24. सरल शब्दों में, किसी अभियुक्त द्वारा निर्मित संस्वीकृति की प्रकृति की प्रथम सूचना प्रतिवेदन उसके विरुद्ध साक्ष्य में अग्राह्य है, सिवाय इसके कि यह दर्शाता है कि उसने अपराध के तुरंत बाद एक कथन किया, जिससे उसकी पहचान प्रतिवेदन के निर्माता के रूप में की गई, जो 1872 के अधिनियम की धारा 8 के तहत उसके आचरण के साक्ष्य के रूप में ग्राह्य है। इसके अतिरिक्त, उसके द्वारा दी गई कोई भी जानकारी जो किसी तथ्य की खोज की ओर ले जाती है, 1872 के अधिनियम की धारा 27 के तहत ग्राह्य है। यद्यपि, 1872 के अधिनियम की धारा 21 के तहत अभियुक्त के विरुद्ध एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन जो संस्वीकृति की प्रकृति का न हो, ग्राह्य है और सुसंगत है।

25. इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा की गई पहली त्रुटि अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री को साक्ष्य में पढ़ना था। जैसा कि पहले कहा गया है, अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन एक संस्वीकृति के बराबर है, और किसी अभियुक्त द्वारा पुलिस के समक्ष की गई किसी भी संस्वीकृति पर 1872 के अधिनियम की धारा 25 लागू होता है। उच्च न्यायालय के लिए अपीलार्थी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना प्रतिवेदन के संस्वीकृति वाले भाग को अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य की संपुष्ट करने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

26. एक बार जब हम कहते हैं कि प्रथम सूचना प्रतिवेदन की सामग्री 1872 के अधिनियम की धारा 25 द्वारा प्रभावित होती है, एक पुलिस अधिकारी के सामने एक संस्वीकृति होने के कारण, अभिलेख पर केवल शेष साक्ष्य चिकित्सकीय साक्ष्य और पंच साक्षियों का मौखिक साक्ष्य है।

ख. किसी विशेषज्ञ साक्षी का साक्ष्य प्रकृति में केवल सलाह है

27. इस स्तर पर, हम उच्च न्यायालय द्वारा अपने आक्षेपित निर्णय में दर्ज किए गए कुछ निष्कर्षों पर गौर कर सकते हैं। हम सुसंगत परिच्छेदों को नीचे उद्धृत करते हैं:

"16. अब, विचारार्थ अगला प्रश्न यह होगा कि क्या इसमें अभियुक्त/अपीलार्थी प्रश्नाधीन अपराध का अपराधी है, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय ने डॉ. आर. के. दिव्या (अ.सा.-10), जिन्होंने शव परीक्षण किया था, के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए सकारात्मक रूप से दर्ज किया है कि मृत्यु का कारण सीने के सामने, दाहिने भाग के उपरी हिस्से पर कटे हुए घाव के कारण दाहिने फेफड़े के ऊपरी भाग के घाव के कारण हीमोथोरैक्स के कारण आघात है। अंततः चिकित्सक ने अपने प्रतिवेदन के माध्यम से मृत्यु की प्रकृति को हत्यात्मक होना माना है। इस प्रकार, डॉ. आर. के. दिव्या (अ.सा.-10) के साक्ष्य के आधार पर, यह स्पष्ट है कि यह अपीलकर्ता है जिसने दुर्भाग्यपूर्ण दिनांक और समय पर मृतक को गंभीर चोटें पहुंचाईं जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय ने ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि यह अपीलार्थी/अभियुक्त ही है जिसने मृतक के शरीर पर चोट पहुंचाकर उसकी मृत्यु कारित की है। तदनुसार, हम एतद्वारा उक्त निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।

26. अपीलार्थी की दोषसिद्धि डॉ. आर. के. दिव्या (अ.सा.-10) के साक्ष्य पर आधारित है, जिसने मृतक के शरीर का शव परीक्षण, प्र.P/34 किया है और उसे मृतक के शव पर निम्नलिखित चोटें मिलीं।

27. डॉ. आर. के. दिव्या (अ.सा.-10) के अनुसार, मृतक की मृत्यु का कारण सीने के सामने, दाहिने भाग के उपरी हिस्से पर कटे हुए घाव के कारण दाहिने फेफड़े के ऊपरी भाग के घाव के कारण हीमोथोरैक्स के कारण आघात है और मृत्यु की प्रकृति हत्यात्मक थी। संबंधित चिकित्सक द्वारा यह भी राय दी गई है कि मृतक को आई चोट धारदार हथियार से कारित हुई है और यह चाकू से भी कारित हो सकती है।

28. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों की ओर लौटते हुए, उपरोक्त वर्णित निर्णयों में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तियों द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांतों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने स्वयं एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन दायर की है जिसमें आरोप लगाया गया है कि घटना के दिनांक को, अपीलार्थी और मृतक के मध्य मृतक को अपनी प्रेमिका की तस्वीर दिखाने के आधार पर कुछ झगड़ा हुआ था और मृतक ने अपनी प्रेमिका को लाने और उसे एक रात के लिए अपने साथ छोड़ देने के लिए कहा था, फिर गुस्से में और अचानक झगड़े पर, अपीलार्थी ने मृतक की छाती पर चाकू से हमला किया, जिससे उसे गंभीर चोट आई और घटना के उसी दिन उसकी छाती पर चोट के कारण अत्यधिक रक्तस्राव के कारण उसकी मृत्यु हो गई। अभिलेख पर उपलब्ध तथ्य से यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने प्रश्नगत अपराध करने के बाद रिपोर्ट दर्ज कराई और उसके ज्ञापन पर उसकी निशानदेही पर कुछ अपराध में आलिस करने वाले वस्तुएं बरामद की गई हैं और आगे की अन्वेषण में दूसरा ज्ञापन दर्ज किया गया है, जिसके द्वारा उसके कपड़े जप्त किए गए थे। यह स्पष्ट है कि यद्यपि अपीलार्थी का मृतक की मृत्यु कारित करने हेतु कोई पूर्वचिंतन था, परन्तु उसने झूठा कथन किया था।"

28. उच्च न्यायालय को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए था कि एक चिकित्सक तथ्य का साक्षी नहीं है। शव परीक्षण प्रतिवेदन और अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सा प्रमाण पत्र, यदि कोई हो तो, की सामग्री को साबित करने के उद्देश्य से अभियोजन पक्ष द्वारा एक चिकित्सा विशेषज्ञ के रूप में एक चिकित्सक का परीक्षण किया जाता है। किसी विशेषज्ञ साक्षी का अभियोजन पक्ष द्वारा कुछ विषयों पर उसके विशेष ज्ञान के कारण परीक्षण किया जाता है, जिसका आकलन करने के लिए न्यायाधीश पूरी तरह से सुसज्जित नहीं हो सकता है। ऐसे विशेषज्ञ का साक्ष्य सलाहकारी चरित्र का होता है। विशेषज्ञ साक्षी की विश्वसनीयता उसके निष्कर्षों के समर्थन में दिए गए कारणों के साथ-साथ उन निष्कर्षों के आधार बनाने वाले आंकड़ों और सामग्री पर निर्भर करती है। किसी अभियुक्त को केवल अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य के आधार पर हत्या के अपराध का दोषी नहीं माना जाया सकता है। जहाँ तक पंच साक्षियों का संबंध है, उनके कथन कोई विश्वास पैदा नहीं करते हैं।

29. अधिकांश पंच साक्षी मुकर गए। यदि लोक अभियोजक पंच साक्षियों के मुकर जाने के बाद पंचनामों की सामग्री को साबित करना चाहता था, तो वह अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य के माध्यम से ऐसा कर सकता था। यद्यपि, अन्वेषण अधिकारी विधि के अनुसार पंचनामों की सामग्री को साबित करने में भी विफल रहे। इस प्रकार, तथ्य की किसी भी खोज से संबंधित साक्ष्य के रूप में अभिलेख पर कुछ भी

नहीं है। दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी के कहने पर 1872 के अधिनियम की धारा 27 के तहत सुसंगत और ग्राह्य तथ्य की कोई खोज स्थापित नहीं की गई है।

ग. 1872 के अधिनियम की धारा 27 और 8 का आलिप्तता

30. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष अपीलार्थी के आचरण को प्रतिफल रखने का पुरजोर आग्रह किया, जो उनके अनुसार 1872 के अधिनियम की धारा 8 के तहत सुसंगत है। उन्होंने निम्नलिखित परिस्थितियों पर जोर दिया:

आई. अपीलार्थी स्वयं पुलिस थाने गया और प्राथमिकी दर्ज कराई। ii. जब अपराध स्थल पर पंचनामा तैयार किया जा रहा था, अपीलार्थी ने बताया कि मृतक का शव मृतक के घर के अंदर दो दीवारों मध्य पड़ा हुआ था। iii. अपीलार्थी अन्वेषण अधिकारी और पंचनामे के साक्षियों को अपने चाचा, रामनाथ यादव के घर ले गया और उस जगह की ओर इशारा किया जहाँ उसने घटना के समय पहने हुए अपने कपड़े रखे थे।

iv. अपीलार्थी की कमीज पर खून का धब्बा भी पाया गया था, यद्यपि, विद्वान अधिवक्ता ने उचित रूप से स्वीकार किया कि यह संकेत देने के लिए कुछ भी नहीं है कि खून का धब्बा मृतक के रक्त समूह से मेल खाता है।

32. 1872 के अधिनियम की धारा 27 इस प्रकार है:

"27. अभियुक्त से प्राप्त कितनी जानकारी साबित हो सकती है।

33. 1872 के अधिनियम की धारा 27 के लागू होने के लिए आवश्यक शर्तें हैं:

- i. कि अभियुक्त द्वारा दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप, कुछ तथ्यों का पता चला;
- ii. ता चला तथ्य वह होना चाहिए जो पुलिस की जानकारी में नहीं था और पहली बार तथ्य की जानकारी आरोपी द्वारा दी गई जानकारी से ली गई थी;
- iii. एक तथ्य की खोज जो ऐसी जानकारी का प्रत्यक्ष परिणाम है;
- iv. उक्त खोज से जुड़ी जानकारी का केवल ऐसा हिस्सा ही ग्राह्य है;
- v. तथ्य की खोज किसी अपराध के किए जाने से संबंधित होनी चाहिए।

34. उपरोक्त संदर्भ में, हम (2009) 9 एस. सी. सी. 417 में प्रतिवेदित **मुरली बनाम राजस्थान राज्य** के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं और उस पर भरोसा कर सकते हैं, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि पंचनामे की सामग्री साक्ष्य का मूल टुकड़ा नहीं है। वह इस प्रकार है;

"34. पंचनामा के लेख ठोस साक्ष्य नहीं हैं। उस मुद्दे पर विधि स्थापित है। ठोस साक्ष्य वह है जो पंचों या संबंधित व्यक्ति द्वारा साक्षी बक्से में कहा गया है।[...]"

(जोर दिया गया)

35. उपरोक्त संदर्भ में, (2005) 7 एस. सी. सी. 714 में प्रतिवेदित ए. एन. वेंकटेश व एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हुआ, जो निम्नानुसार कहता है:

"9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के आधार पर, अभियुक्तगण का आचरण सुसंगत है, यदि ऐसा आचरण मुद्दे या सुसंगत तथ्य में किसी भी तथ्य को प्रभावित करता है या प्रभावित करता है। इस परिस्थिति का साक्ष्य, सरलतर, कि अभियुक्त ने पुलिस अधिकारी को उस स्थान की ओर इशारा अभिनिर्धारित किया जाता है जहां अपहृत लड़के का शव मिला था और शव को बाहर निकालने पर, धारा 8 के तहत आचरण के रूप में ग्राह्य होगा, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि क्या अभियुक्त द्वारा समकालीन रूप से दिया गया कथन या इस तरह के आचरण का पूर्ववर्ती कथन धारा 27 के दायरे में आता है या नहीं जैसा कि इस न्यायालय ने प्रकाश चंद बनाम राज्य (दिल्ली केंद्र शासित प्रदेश) [प्रकाश चंद बनाम राज्य (दिल्ली केंद्र शासित प्रदेश), (1979) 3 एस. सी. सी. 90:1979 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 656]भले ही हम यह मानते हैं कि अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन (प्र.P-15 और P-16) साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत ग्राह्य नहीं है, फिर भी यह धारा 8 के तहत सुसंगत है।"

(जोर दिया गया)

36. इस संदर्भ में, हम सावधानी बरतना आवश्यक समझते हैं। यद्यपि किसी अभियुक्त का आचरण 1872 के अधिनियम की धारा 8 के तहत एक सुसंगत तथ्य हो सकता है, परंतु यह अपने आप में दोषसिद्धि के लिए एकमात्र आधार के रूप में काम नहीं कर सकता है, विशेष रूप से हत्या जैसे गंभीर आरोप में। साक्ष्य के किसी भी अन्य टुकड़े की तरह, अभियुक्त का आचरण केवल उन परिस्थितियों में से एक है जिन पर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध अन्य प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य के साथ विचार सकती है। संक्षेप में कहें तो, यद्यपि सुसंगत है, केवल अभियुक्त का आचरण ठोस और विश्वसनीय सहायक साक्ष्य के अभाव में दोषसिद्धि को उचित नहीं ठहरा सकता है।

घ. भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 का गलत अनुप्रयोग।

37. हम इस स्तर पर अपील को स्वीकार कर और इस तरह अपीलार्थी को उसके विरुद्ध सभी आरोपों से दोषमुक्त कर निर्णय का समापन कर सकते थे। तथापि, हम भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 के संबंध में कुछ टिप्पणियां करना आवश्यक समझते हैं। हम यह बताना चाहते हैं कि उच्च न्यायालय भा.द.वि. की धारा 300 में अपवाद 4 को क्यों लागू नहीं कर सकता था और दोषसिद्धि को भा.द.वि. की धारा 302 से धारा 304 में क्यों नहीं बदल सकता था। यदि अभिलेख पर अपीलार्थी को कथित अपराध से जोड़ने वाला कोई अन्य मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य होता, तो हम उसकी अपील को खारिज कर देते। उसकी अपील को खारिज करते हुए और उसे हत्या के अपराध का दोषी ठहराते हुए भी, हम अपवाद 4 के त्रुटिपूर्ण अनुप्रयोग में हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं होते, क्योंकि भा.द.वि. की धारा 302 के तहत दोषमुक्त किए जाने को चुनौती देने वाली राज्य की ओर से कोई अपील नहीं है। फिर भी, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय ने भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 के भीतर प्रकरण को लाने में त्रुटि क्यों की।

38. भा.द.वि. की धारा 299 सदोष मानव वध की व्याख्या, मृत्यु के आशय से कोई कृत्य करके, या ऐसी शारीरिक क्षति पहुँचाने के आशय से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, या इस ज्ञान के साथ कि जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह मृत्यु का कारण बन सकता है, के रूप में करती है। पहली दो श्रेणियों में मृत्यु का कारण बनने का आशय, या मृत्यु का कारण बनने की संभावना की आवश्यकता होती है। जबकि, तीसरी श्रेणी खुद को इस ज्ञान तक सीमित रखती है कि जिस कृत्य की शिकायत की गई है, वह मृत्यु का कारण बन सकता है। इस प्रकरण के तथ्यों पर, सदोष मानव वध का अपराध स्पष्ट रूप से सामने आया है।

39. भा.द.वि. की धारा 300 हत्या की व्याख्या करती है और यह उपबंधित करती है कि सदोष मानव वध हत्या है यदि, जिस कृत्य से मृत्यु हुई है वह मृत्यु के आशय से किया गया है, या जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह इतना आसन्न रूप से खतरनाक है कि यह सभी संभावनाओं में मृत्यु का कारण बनता है, या "ऐसी शारीरिक क्षति जिससे मृत्यु होने की संभावना है"। कुछ अपवाद हैं जब सदोष मानव वध हत्या नहीं है और हम अपवाद 4 से संबंधित हैं जो कहता है:

“अपवाद 4.- सदोष मानव वध हत्या नहीं है यदि वह मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुए अचानक लड़ाई में पूर्वचिंतन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो। स्पष्टीकरण- ऐसी दशाओं में यह तत्त्वहीन है कि कौन पक्ष प्रकोपन देता है या पहला प्रहार करता है।”

40. भा.द.वि. की धारा 300 का अपवाद 4 किसी भी पूर्वचिंतन के अभाव में लागू होता है। यह उपबंध में उपयोग किए गए शब्दों से ही बहुत स्पष्ट है। यह विचार करता है कि अचानक हुई लड़ाई आवेग की तीव्रता में, या अचानक झगड़े के कारण हुई होनी चाहिए। यह अपवाद उकसावे के प्रकरण से संबंधित है जो अपवाद 1 में सम्मिलित नहीं है, यद्यपि इसे उस अपवाद के बाद अधिक उचित रूप से रखा गया होगा। यह एक ही सिद्धांत पर आधारित है, क्योंकि दोनों में ही पूर्वचिंतन की अनुपस्थिति सम्मिलित है। यद्यपि, जबकि अपवाद 1 में आत्म-नियंत्रण का पूर्ण अभाव सम्मिलित है, अपवाद 4 उस आवेग की तीव्रता को संदर्भित करता है जो किसी व्यक्ति के शांत विवेक को कम करता है और उन्हें ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित करता है जो वे अन्यथा नहीं करेंगे। अपवाद 4 में उकसावा है, जैसा कि अपवाद 1 में है, परन्तु जो क्षति पहुँची है वह उस उकसावे का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। वस्तुतः अपवाद 4 उन मामलों से संबंधित है जहां विवाद की शुरुआत में एक प्रहार या उकसावे के बावजूद, इस बात की परवाह किए बिना कि झगड़ा कैसे उत्पन्न हुआ, फिर भी दोनों पक्षों का बाद का आचरण उन्हें अपराध के संबंध में समान स्तर पर रखता है।

41. एक "अचानक लड़ाई" का अर्थ है आपसी उकसावा और दोनों पक्षों पर प्रहारों का आदान-प्रदान। ऐसे मामलों में, की गई हत्या स्पष्ट रूप से एकतरफा उकसावे के लिए जिम्मेदार नहीं है, और न ही पूरे दोष को एक तरफ रखा जा सकता है। यदि ऐसा होता तो अपवाद 1 अधिक उपयुक्त उपबंध होगा। लड़ने के लिए कोई पूर्व विचार-विमर्श या आशय नहीं है; लड़ाई अचानक शुरू हो जाती है, और दोनों पक्ष कमोबेश दोषी होते हैं। हो सकता है कि एक पक्ष ने इसकी शुरुआत की हो, परन्तु दूसरे ने अपने स्वयं के आचरण से स्थिति को नहीं बढ़ाया होता, तो यह इतना गंभीर स्तर तक नहीं बढ़ा होता। ऐसे परिदृश्यों में, आपसी उकसावा और उत्तेजना होती है, जिससे प्रत्येक प्रतिभागी के लिए दोष के सटीक हिस्से को निर्धारित करना मुश्किल हो जाता है। यदि मृत्यु हो जाती है तो अपवाद 4 के संरक्षण का आह्वान किया जा सकता है: (क) बिना पूर्व विचार के; (ख) अचानक लड़ाई में; (ग) अपराधी के अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या अप्रायिक रीति से काम किए बिना; और (घ) लड़ाई मृतक के साथ हुई होगी।

42. अपवाद 4 के दायरे में किसी प्रकरण को लाने के लिए, उसमें उल्लिखित सभी अवयवों को संतुष्ट किया जाना चाहिए। यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 में होने वाले "लड़ाई" शब्द को भा.द.वि. में परिभाषित नहीं किया गया है। एक लड़ाई में अनिवार्य रूप से दो पक्ष सम्मिलित होते हैं- लड़ाई करने के लिए दो की आवश्यकता होती है। आवेग की तीव्रता के लिए आवश्यक है कि आवेग को शांत करने के लिए कोई समय नहीं होना चाहिए, और ऐसे प्रकरण में, पक्षों ने पहले मौखिक विवाद के कारण खुद को क्रोधित कर लिया होगा। लड़ाई दो और दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य की लड़ाई है, चाहे वह हथियारों के साथ हो या बिना हथियारों के। कोई भी सामान्य नियम बनाना संभव नहीं है कि "अचानक झगड़ा" क्या है। यह तथ्य का प्रश्न है, और क्या झगड़ा अचानक होता है या नहीं,

यह आवश्यक रूप से प्रत्येक प्रकरण के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर करता है। अपवाद 4 के अनुप्रयोग के लिए, यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वचिंतन नहीं थी। यह भी दर्शाया गया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया और क्रूर या अप्रायिक रीति से अधिनियम कार्य नहीं किया। उपबंध में उपयोग की गई अभिव्यक्ति "अनुचित लाभ" का अर्थ है "अऋजु लाभ"।

43. उपरोक्त परिप्रेक्ष्य से, यह सामने आता है कि जब भी किसी न्यायालय का सामना इस प्रश्न से होता है कि क्या अपराध "हत्या" है या "सदोष मानव वध जो हत्या के बराबर नहीं है", तो तीन चरणों में समस्या का समाधान करना सुविधाजनक होगा। पहले स्तर में जिस प्रश्न पर विचार किया जाना है, वह यह है कि क्या अभियुक्त ने ऐसा कोई कृत्य किया है जिसके कारण दूसरे व्यक्ति की मृत्यु हुई हो। अभियुक्त के कृत्य और परिणामी मृत्यु के मध्य संबंध का प्रमाण दूसरे चरण की ओर ले जाता है, इस बात पर विचार करने के लिए कि क्या अभियुक्त का वह कृत्य भा.द.वि. की धारा 299 में परिभाषित "सदोष मानव वध" के बराबर है। यदि इस प्रश्न का उत्तर, प्रथम दृष्टया, सकारात्मक पाया जाता है, तो अगले चरण में भा.द.वि. की धारा 300 के अनुप्रयोग पर विचार करना सम्मिलित है। इस स्तर पर, न्यायालय को यह निर्धारित करना होगा कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किए गए तथ्य प्रकरण को धारा 300 में निहित "हत्या" की परिभाषा के चार खंडों में से किसी के दायरे में लाते हैं। यदि इसका उत्तर नकारात्मक है, तो अपराध "सदोष मानव वध" होगा, जो धारा 304 के पहले या दूसरे भाग के तहत दण्डनीय होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि धारा 299 का दूसरा या तीसरा खंड लागू होता है या नहीं। यद्यपि, यदि उत्तर सकारात्मक है, परन्तु भाग धारा 300 में सम्मिलित गए किसी भी अपवाद के भीतर आता है, तो अपराध तब भी "सदोष मानव वध" होगा, जो भा.द.वि. की धारा 304 की धारा 1 के तहत दण्डनीय होगा।

44. (1976) 4 एस. सी. सी. 382 में प्रतिवेदित आंध्र प्रदेश राज्य बनाम रायवरपु पुन्नय्या व अन्य में, इस न्यायालय ने धारा 302 और धारा 304 के मध्य विभेद करते हुए निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"12. दण्ड विधान की योजना में, "सदोष मानव वध" वंश है और "हत्या" इसकी प्रजाति है। सभी "हत्या" "सदोष मानव वध" हैं परन्तु सभी "सदोष मानव वध" "हत्या" नहीं। आम तौर पर, "सदोष मानव वध" बिना "हत्या की विशेष विशेषताओं" के, "सदोष मानव वध जो हत्या के बराबर नहीं है" है। इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात में दण्ड तय करने के उद्देश्य से, संहिता व्यावहारिक रूप से सदोष मानव वध के तीन स्तरों को मान्यता देती है। पहला है, जिसे "प्रथम श्रेणी का सदोष मानव वध" कहा जा सकता है। यह सदोष मानव वध का सबसे बड़ा रूप है, जिसे धारा 300 में "हत्या" के प्रारूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे को "द्वितीय श्रेणी का सदोष मानव वध"

कहा जा सकता है। यह धारा 304 के प्रथम भाग के तहत दण्डनीय है। फिर, "तृतीय श्रेणी का सदोष मानव वध" होता है। यह सबसे निम्न प्रकार का सदोष मानववध है तथा इसके लिए दिए जाने वाला दण्ड भी तीनों श्रेणियों के लिए दिए जाने वाले दण्डों में सबसे कम होता है। इस स्तर की दण्डनीय हत्या धारा 304 के द्वितीय भाग के तहत दण्डनीय है।"

(जोर दिया गया)

45. (2012) 13 एस. सी. सी. 663 में प्रतिवेदित बुधि सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य में इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"18. अचानक और गंभीर उकसावे का सिद्धांत सार्वभौमिक अनुप्रयोग के किसी भी सिद्धांत की ओर ले जाने या बताने वाले कठोर निर्माण में असमर्थ है। यह सदैव किसी दिए गए प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर होगा। इस सिद्धांत को लागू करते समय, न्यायालय का प्राथमिक दायित्व उचित विवेक वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण से जांच करना है कि क्या ऐसा गंभीर और अचानक उकसावा था ताकि उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि सदोष मानव वध का अपराध करना संभव था, और तथ्यों के अनुसार, हत्या के बराबर सदोष मानव वध नहीं थी। गंभीर और अचानक उकसावे के परिणामस्वरूप होने वाले अपराध का आम तौर पर अर्थ होता है कि ऐसी परिस्थितियों में लाया गया व्यक्ति आत्म-नियंत्रण खो सकता है, परन्तु केवल अस्थायी रूप से और वह भी उकसावे के समय के निकट। उकसाना मृतक द्वारा अभियुक्त के साथ किया गया एक कृत्य या कृत्यों की श्रृंखला हो सकती है जिसके परिणामस्वरूप उसे क्षति पहुँच सकती है। एक व एक अन्य परीक्षण जो अधिक बार लागू किया जाता है वह यह है कि हमलावर का व्यवहार एक उचित व्यक्ति का था। अचानक और गंभीर उकसावे के परिणामस्वरूप अचानक और अस्थायी आत्म-नियंत्रण की हानि और हत्या करने के वास्तविक आशय को प्रेरित करने मध्य एक अच्छा विभेद ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस तरह का कृत्य मन की स्थिति की निरंतरता और ऐसे व्यक्ति को मारने के समय और मन पर प्रभुत्व हासिल करने के कारणों के दौरान किया जाना चाहिए था। एक बार जब हत्या करने के आशय से पूर्व नियोजित कृत्य हो जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से सदोष मानव वध के दायरे से बाहर हो जाएगा।

(जोर दिया गया)

46. (1993) 4 एस. सी. सी. 238 में प्रतिवेदित किकर सिंह बनाम राजस्थान राज्य के प्रकरण में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"8. अधिवक्ता ने प्रकरण को अपवाद 4 के भीतर लाने का प्रयास किया। इसके अनुप्रयोग के लिए उसमें उल्लिखित सभी शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए। कृत्य आवेग की तीव्रता में अचानक लड़ाई में पूर्व-चिंतन के बिना किया जाना चाहिए; (2) अचानक झगड़े पर; (3) अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना; (4) और अभियुक्त ने क्रूर या अप्रायिक रीति से कार्य नहीं किया था। अतः आपसी मुठभेड़ या प्रहारों का आदान-प्रदान होना चाहिए और पहला प्रहार, या उकसावा कितना भी हलका क्यों न हो, हर नया प्रहार एक नया उकसावा बन जाता है। रक्त पहले से ही गर्म होता है और हर आघात पर और गर्म हो जाता है। आवेग की तीव्रता में किसी भी तरफ से तर्क की आवाज नहीं सुनी जाती है। अतः लड़ाई की शुरुआत में चीजों की स्थिति के संदर्भ में उनके मध्य दोष की संबंधित सीमा को विभाजित करना मुश्किल है, परन्तु यह अचानक लड़ाई अर्थात् आपसी मुठभेड़ के परिणामस्वरूप होना चाहिए, न कि एक तरफ। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि झगड़े का कारण क्या है, चाहे वह वास्तविक हो या काल्पनिक, या कौन पहले हथियार निकालता है या हमला करता है। प्रहार की मार दूसरे को जान से मारने या गंभीर रूप से घायल करने के आशय के बिना होना चाहिए। यदि दो आदमी लड़ना शुरू कर देते हैं और उनमें से एक निहत्था है जबकि दूसरा एक घातक हथियार का उपयोग करता है, तो इस तरह के हथियार का उपयोग करने वाले को अनुचित लाभ उठाने के लिए माना जाना चाहिए जो उसे अपवाद 4 की पात्रता से वंचित करता है। यह सच है कि घावों की संख्या मानदण्ड नहीं है, परन्तु अभियुक्त और मृतक की स्थिति उनके उपयोग किए गए हथियारों के संबंध में, अपवाद 4 को लागू करते समय मुठभेड़ के तरीके को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जब मृतक सशस्त्र नहीं था, परन्तु अभियुक्त घातक परिणामों के साथ मृतक को घायल कर रहा था, तो धारा 300 में उत्कीर्ण अपवाद 4 को छोड़ दिया जाता है और किया गया अपराध हत्या का होगा। 9. अचानक झगड़े का अवसर न केवल अचानक होना चाहिए, परन्तु हमला किए गए पक्ष को बचाव के मामले में कम से कम शुरुआत में समान स्थिति में होना चाहिए। यह विशेष रूप से तब होता है जब हमला खतरनाक

हथियारों से किया जाता है। जहाँ मृतक निहत्था था और उसने अचानक हुए झगड़े के बाद भी अभियुक्त को कोई क्षति नहीं पहुँचाई यदि अभियुक्त ने मृतक पर घातक प्रहार किए हैं, तो अपवाद 4 आकर्षित नहीं होता है और दण्डनीय हत्या धारा 302 के तहत दण्डनीय होनी चाहिए। समान रूप से अपवाद 4 को आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रहारों का आदान-प्रदान किया गया हो, भले ही वे निशाने पर न लगें। भले ही लड़ाई पूर्व नियोजित न हो और अचानक हो, फिर भी अगर प्रतिशोध का साधन या तरीका उक्त अपराध के लिए बहुत असमान है, और अपनी प्रकृति में क्रूर और खतरनाक है, तो अभियुक्त को अपवाद 4 के तहत संरक्षित नहीं किया जा सकता है.....”

(जोर दिया गया)

47. इस न्यायालय ने (2017) 5 एस. सी. सी. 796 में प्रतिवेदित **सुरैन सिंह बनाम पंजाब राज्य** के प्रकरण में कहा है कि:

“अपवाद 4 की सहायता तब ली जा सकती है जब मृत्यु (क) पूर्व-चिंतन के बिना, (ख) अचानक लड़ाई में, (ग) अपराधियों द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना, और (घ) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ हुई होगी। किसी प्रकरण को अपवाद 4 के भीतर लाने के लिए उसमें उल्लिखित सभी अवयवों को पाया जाना होगा। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 में होने वाली "लड़ाई" को भा.द.वि. में परिभाषित नहीं किया गया है.....लड़ाई दो और दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य एक मुठभेड़ है चाहे वह हथियारों के साथ हो या उसके बिना। किसी भी सामान्य नियम व्यक्त करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा किसे माना जाएगा। यह तथ्य का प्रश्न है और क्या झगड़ा अचानक हुआ था या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक प्रकरण के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर करता है। अपवाद 4 के अनुप्रयोग के लिए, यह दिखाया जाना पर्याप्त नहीं है कि झगड़ा अचानक हुआ था और कोई पूर्वचिंतन नहीं था। यह आगे दर्शाया गया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या अप्रायिक रीति से कार्य नहीं किया है। उपबंध में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "अनुचित लाभ" का अर्थ है "अक्रजु लाभ"।”

(जोर दिया गया)

48. भा.द.वि. की धारा 304 सदोष मानव वध के लिए दण्ड निर्धारित करती है। इस धारा के भाग 1 उपबंधित करता है कि यदि वह कृत्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है, मृत्यु का कारण बनने या ऐसी शारीरिक क्षति का कारण बनने के आशय से किया गया हो जिससे मृत्यु होने की संभावना है, तो दण्ड आजीवन कारावास तक हो सकती है। दूसरी ओर, धारा 304 के भाग 2 में यह उपबंधित है कि यदि आपराधिक कृत्य इस ज्ञान के साथ किया जाता है कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, परन्तु मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति पहुंचाने के आशय के बिना, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, तो दण्ड 10 वर्ष के कारावास तक हो सकती है।

49. उच्च न्यायालय ने भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 4 के केवल पहले भाग पर विचार किया। यह भाग आवेग की तीव्रता में अचानक झगड़े से उत्पन्न होने वाली अचानक लड़ाई में पूर्व-चिंतन की अनुपस्थिति को संदर्भित करता है। यद्यपि, यह वहाँ समाप्त नहीं होता है। अपवाद के लिए आगे यह आवश्यक है कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया होगा या क्रूर या अप्रायिक रीति से कार्य नहीं किया होगा। जिस तरीके से प्रहार किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि अपराधी अर्थात् अपीलार्थी ने अनुचित लाभ उठाया और यह भी कहा जा सकता है कि उसने क्रूर या अप्रायिक रीति से काम किया था। मृतक निहत्थे था, यह दो व्यक्तियों मध्य आपसी लड़ाई नहीं थी जो प्रकरण को अपवाद 4 के दायरे में लाए। जब अपीलार्थी ने उसके पूरे शरीर पर अंधाधुंध रूप से चोटें पहुंचाईं तो मृतक बिल्कुल हानिरहित था।

50. अतः यदि उच्च न्यायालय भा.द.वि. की धारा 300 के किसी भी अपवाद का लाभ देने का इरादा रखता था, तो उसे भा.द.वि. की धारा 300 के अपवाद 1 पर विचार करना चाहिए था। यद्यपि, हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम अपवाद 1 अर्थात् गंभीर और अचानक उकसावे में तल्लीन हों, क्योंकि हम पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि हाथ में प्रकरण कोई विधिक साक्ष्य नहीं है अतः अपीलार्थी दोषमुक्त किए जाने का हकदार है। हम केवल यह स्पष्ट करने के लिए अपवाद 1 का उल्लेख करते हैं कि, यदि केवल यह अपवाद ही था जिसकी जांच की जा सकती थी। यह अभिकथित है कि जब अपीलार्थी और मृतक मृतक के आवास पर शराब पी रहे थे, तब अपीलार्थी ने मृतक को अपनी प्रेमिका की एक तस्वीर दिखाई। मृतक ने कथित तौर पर एक अश्लील टिप्पणी की- "अपनी प्रेमिका को मेरे घर ले जाओ और उसे एक रात के लिए मेरे साथ छोड़ दो।" ऐसे कथन ने अपीलार्थी को उकसाया होगा, जिसने तब घर के एक कोने में पड़ा सब्जी काटने वाला चाकू उठाया और मृतक को घायल कर दिया। इस पहलू पर उस संदर्भ में विचार किया जा सकता था।

ग. निष्कर्ष

51. मामले के समग्र दृष्टिकोण से, हम आश्वस्त हैं कि छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा दायित्व अपील संख्या 1538/2021 दिनांक 16.01.2025 में पारित आक्षेपित निर्णय विधि में स्थिर रखे जाने योग्य नहीं है।

52. परिणामस्वरूप, यह अपील सफल होती है और एतद्वारा स्वीकार की जाती है।

53. अपीलार्थी को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है और यदि किसी अन्य प्रकरण में उसकी आवश्यकता नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए। जमानत बंधपत्र, यदि कोई हो तो, उन्मोचित होते हैं।

54. रजिस्ट्री इस निर्णय की एक-एक प्रति सभी उच्च न्यायालयों को प्रसारित करेगी।

प्रकरण का परिणाम : अपील स्वीकार की गई।

† द्वारा तैयार किए गए हेडनोट:दिव्या पांडे

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

